'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ११९ | वाराणसी, शनिवार, १७ अक्टूबर, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

पठानकोट (पंजाब) २४-९-'५९

शान्ति-सेना-मंडल और हमारा कर्तव्य

आरम्भ में अभी जो शांति-सेना-मंडल का एलान किया गया, उस विषय में मैं कुछ स्पष्टता कर दूँ। शांति-सेना का विचार तो पुराना ही है। वह शब्द भी बापू का है, कल्पना भी उनकी है। उसके लिए उन्होंने कोशिश भी की थी।

शब्द से कृति श्रेष्ठ

मैंने एक दफा गांधीजी की स्मृति में बोलते हुए कहा था कि वे शांतिसेना के पहले सेनापति और सैनिक भी थे। सेनापति के नाते उन्होंने 'करो या मरो' का हुक्म दिया और सैनिक के नाते उसपर अमल किया। याने उसका एक पूर्ण चित्र हमारे सामने कृति से, जीवन से रखा। वैसे उन्होंने शब्दों से कम नहीं समझाया, फिर भी शब्द से कम समझाया जाता है। शब्दशक्ति बढ़ती जाती है। पुराने शब्द अधूरे साबित होते हैं। नये-नये शब्द सूझते जाते हैं, इसलिए वह प्रक्रिया चलती ही रहती है। लेकिन जहाँ कृति का, जीवन का ताल्लुक था, उन्होंने एक परिपूर्ण चित्र हमारे सामने रखा।

जब मैं शिवरामपल्ली के सम्मेलन के लिए अकेला निकल पड़ा था, तब वहाँसे लौटते समय तेलगांना होकर जाने का तय किया था। उस वक्त मैंने पहले ही जाहिरा तौर पर कहा था कि मैं एक शांतिसैनिक के नाते जा रहा हूँ। भूदान-यज्ञ तो फिर उसमें से आगे निकला। परन्तु मेरा विचार शान्ति-सैनिक के नाते परिस्थिति को देखने का और अगर कुछ बन सकता हो तो कोशिश करने का था। इस तरह शान्तिसेना का विचार मेरे मन में सतत रहा है। बापू के जाने के बाद मुझे डेढ़ साल हिन्दुस्तानभर में घूमने का मौका मिला था। वह पैदल यात्रा नहीं थी, वाहनों की थी। उस वक्त जगह-जगह मैंने सर्वोदय के विषय में कहा। उसकी एक छोटी-सी, मुक्तसर किताब छपी, जिसका नाम रखा 'शांति-यात्रा'।

दुनिया को बचानेवाली ताकत

इस तरह वह कल्पना तो पृष्ठभूमि में थी ही, लेकिन स्पष्टतः शान्ति-सेना की योजना मुझे करनी पड़ेगी, ऐसा दर्शन मुझे केरल में हुआ। वहाँकी परिस्थिति देखकर मुझे वह दर्शन हुआ। उस वक्त जब मुझसे पूछा जाता था कि यहाँकी कौनसी परिस्थिति देखकर आपने यह सब सोचा ? मैं उत्तर देता था कि आज की वर्तमान परिस्थिति देखकर मुझे वह विचार नहीं सूझा, लेकिन उसमें एक भावी दर्शन था। अब वह भावी दर्शन प्रकट हुआ है। वह केरल में ही प्रकट हुआ है, यह अलग बात है, लेकिन वह केरल में ही प्रकट होने की जरूरत नहीं थी और कहीं भी प्रकट हो सकता था। हिन्दुस्तान की परिस्थिति ऐसी स्फोटक है कि कहीं भी स्फोट होना संभव था, लेकिन केरल में जो हुआ, उसकी तरफ सारे हिन्दुस्तान का ध्यान खींचा गया, यद्यपि दूसरे प्रान्तों में भी कुछ-न-कुछ होता ही है। मैं तो आगे का एक और दर्शन देख रहा था। ग्रामदान, मिल्कियत मिटाना वगैरह शान्ति के ढंग से क्रान्ति करने का काम नहीं हो सकेगा, अगर उसके साथ-साथ लोगों के लिए हम याने हमारा विचार आज की हालत में भी याने विषमता कायम रहते हुए जो हालत रहेगी, उस हालत में भी रक्षक है, ऐसा लोग महसूस नहीं करेंगे। विषमता, उच्च-नीचता वगैरह जो अशांति के कारण हैं, वे जायँगे तो अशान्ति मिटेगी, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन हम इतना कहकर अपने मन को शान्त रखेंगे कि कहीं अशान्ति हुई तो हम क्या कर सकते हैं ? हमने तो एक रास्ता ले लिया है, मिल्कियत मिटाने का, रचनात्मक काम का, जो लोगों के सामने रखा है। उसे अगर मानते हैं तो ठीक, नहीं मानते हैं तो आज की विषम परिस्थिति में अशांति के बीज फूट ही निकलेंगे तो हम क्या करेंगे ? हमने एक रास्ता सामने रखा है, उसपर लोग नहीं चलते हैं तो उसके बुरे फल उनको चखने पड़ें तो हम क्या करें ? यूँ कहकर हम शान्त रहेंगे तो शान्तिमय क्रान्ति के हमारे शब्दमात्र ही रह जायँगे। वह चीज जनता में नहीं पैठ सकेगी। उससे जनता का हृदय प्रभावित नहीं हो सकेगा और उससे अपने हृदय को भी अन्तःसमाधान नहीं हासिल हो सकेगा। इसलिए हमने क्रान्ति की शान्तिमय प्रक्रिया जो चलायी है, उसकी भी वृद्धि के लिए जरूरी था कि हम शान्ति का जिम्मा उठायें। इसके मानी यह नहीं कि हम कोई ऐसी ताकत रखते हैं, जो दुनिया को बचाये। हम तो ताकत नहीं रखते हैं, लेकिन अहिंसा का विचार वह ताकत रखता है। दुनिया को बचाने का दावा अहिंसा का विचार कर सकता है, ऐसी शक्ति अहिंसा में है तो उस विश्वास के साथ हमें उस दिशा में कोशिश करनी चाहिए। यूँ समझकर मैंने केरल में शान्ति-सेना का विचार

www.vinoba.in

प्रकट किया और तदनुसार एक छोटी-सी शान्ति-सेना, जिसमें केलप्पनजी भी थे, बनायी और उसकी घोषणा की।

सभी शांति-सेना का काम करें

लोगों ने उसपर कई शंकाएँ पेश कीं और कहा कि आपने एक नया कार्यक्रम देश के सामने रखा है, इससे कार्यकर्ताओं के चित्त में चंचलता आयेगी, एकाग्रता नहीं रहेगी। हमने कहा कि ऐसी बात नहीं है, अपने काम में से ऐसी चीज निकलती है। इसके बिना क्रान्ति की प्रक्रिया आगे बढ़ना सम्भव नहीं है, इसलिए शान्तिसेना संगठित करने से एकाग्रता भंग हुई ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसके बाद शान्ति-सेना के लिए लोगों की सम्मति की जरूरत थी, उसीमें से सर्वोदय-पात्र का विचार निकला, इस तरह धीरे-धीरे विचार आगे बढ़ता गया। देश में थोड़े शान्ति-सैनिक बने और उन्होंने जगह-जगह कुछ काम किया। काम तो इतना थोड़ा था कि कुल मिलाकर उसकी तरफ लोगों का ध्यान नहीं खींचा गया। लेकिन इतना ही अगर हिंसा का काम हो तो लोगों का ध्यान फौरन खींचा जाता है। उसका कारण यह है कि हमारा जीवन ही शान्तिमय है। अन्तरात्मा का स्वरूप तो शान्तिमय है ही, लेकिन बावजूद इसके हम हमारे जीवन में, समाज में काफी अशान्ति का अनुभव करते हैं। फिर भी कुल मिलाकर हमारा जीवन शान्तिमय है। इसलिए कहीं कुछ अशांति दीख पड़ी तो जैसे सफेद वस्त्र पर काला धब्बा दीख पड़ता है, वैसे ही सबका ध्यान उस तरफ फौरन खिंच जाता है। दुनिया में कहीं भी थोड़ी हिंसा हुई तो सबका ध्यान उसकी तरफ जाता है। क्योंकि हमारा मूल स्वरूप, आत्माराम शान्तिमय है, जीवन भी शांतिमय है। इसीलिए शान्ति-सेना का कुछ काम हुआ तो लोगों का ध्यान उतना नहीं खींचा गया। अभी कहीं कुछ उपवास किये गये, कहीं कार्यकर्ताओं ने लोगों में जाकर काम किया। तमिलनाड़, अहमदाबाद, बड़ोदा, उत्तर-प्रदेश, ओरिसा और बिहार में सीतामढ़ी वगैरह कई जगह कुछ छोटे-मोटे शांति के काम किये गये। लेकिन मैं सोचता था कि अब यह शांति-सेना का कार्य जगह-जगह शांतिसैनिक और लोक-सेवक करेंगे, खादी के कार्यकर्ता करेंगे, उसमें दूसरे लोग चाहे किसी पक्षवाले भी हों तो कुछ मदद देंगे और आम जनता भी मदद देगी।

आस्था का स्थान

अब सर्व-सेवा-संघ का नया स्वरूप बना है तो जगह-जगह जो शांति-सैनिक हैं, वे वहाँकी परिस्थिति देखकर कुछ-न-कुछ करेंगे। वह उनका धर्म ही है। इस तरह स्थानीय लोगों पर ही काम की मुख्य जिम्मेवारी आती है। तिसपर भी अखिल भारत के लिए एक योजना हो, यह मैंने सोचा है। इस तरह हमने यह मण्डल बनाया, जिसमें ऐसे लोग हैं, जो इस दृष्टि से सोचनेवाले हैं और सब लोग उनसे सलाह-मशविरा कर सकते हैं। कभी कोई बात पूछनी हो तो पूछ सकते हैं। कभी कोई शिकायत हो तो इस मण्डल के पास आ सकती है। इस तरह यह जो मण्डल बना है, वह सलाह देने का, कहीं कुछ हुआ तो उसका निरीक्षण करने का, मार्गदर्शन करने का काम कर सकता है, कुछ उपाय सुझाने का काम भी कर सकता है और सारे भारत में एक सर्वसामान्य वातावरण भी पैदा कर सकता है। इससे भारत के लोगों को इत्मीनान हो सकता है कि कहीं सलाह करने का मौका आये तो एक मण्डल है, रिफरेन्स, संदर्भ का एक स्थान है। इससे ज्यादा भी यह मण्डल कर सकता है। जहाँ वह आवश्यक समझेगा, वहाँ अपनी ओर से कुछ कदम भी उठा सकेगा। लेकिन मामूली तौर पर प्रत्यक्ष काम की जिम्मेवारी मुकामी लोगों की ही रहेगी। उनके लिए एक 'बोधछत्र' यह अखिल भारतश ंति-सेना-मण्डल रहेगा। उसमें अभी तेरह नाम जाहिर किये हैं। उसके अलावा और भी दो-तीन नाम जोड़े जा सकते हैं। सूझने पर उसका भी एलान किया जायगा।

शांति-सेना मंडल

मेरे लिए यह पहला ही मौका है कि अपनी ओर से मैंने एक ऐसा अखिल भारत शांति-सेना मंडल जाहिर किया है। यह जो मैंने जिम्मेवारी महसूस की, वह बापू की विरासत है, जिसे टालना मेरे लिए असम्भव था। अभी मैं पैदल-यात्रा कर रहा हूँ, लेकिन इसके मानी यह नहीं कि जगह-जगह जो अशांति के काम बनेंगे, उनकी जिम्मेवारी से मैं अपने को बरी मान सकूँगा, इसकी जिम्मेवारी मैं अपनी मानता हूँ और उस जिम्मेवारी में हाथ बँटाने के लिए यह मंडल बना है। उन लोगों की मुझपर कृपा है, जिन्होंने मंडल में रहना स्वीकार किया है। उनकी इस विचार पर कोई कृपा नहीं है, क्योंकि वे इस विचार का नमक खाये हुए हैं, इसके चाकर हैं। इसलिए इस विचार पर उनका कोई उपकार नहीं है, इस विचार का ही उनपर उपकार है। उन-पर इसका जो ऋण है, उससे कुछ मुक्त होने का मौका उन्हें मिलेगा, परन्तु मुझपर उनका उपकार हुआ है। अगर वे इस बात को न मानते तो सारी जिम्मेवारी मुझपर आती, जिसे निभाना मेरे लिए मुश्किल हो जाता। उसके फिर कुछ आध्यात्मिक उपाय किये जा सकते थे, लेकिन वे आत्यंतिक उपाय होते। हर समय आत्यंतिक उपाय करना समाज के लिए और करनेवाले के लिए कठिन होता है। इसलिए उस जिम्मेवारी में हाथ बँटानेवाली एक संस्था बन जाती है तो मेरे लिए जरा राहत होती है। मानसिक राहत नहीं, लेकिन स्थूल राहत होती है। इसलिए मैंने यह मंडल बनाया।

सोचने का गलत ढंग

अब आपकी जिम्मेवारी स्पष्ट है। आपको और हमको बहुत गम्भीरता-पूर्वक सोचना चाहिए। ऊपर-ऊपर से सोचेंगे तो हमपर कौन सी जिम्मेवारी है, इसका एहसास नहीं होगा। आज हालत यह है कि हमपर जो जिम्मेवारी है, उसे निभाने के लिए हम छोटे पड़ते हैं। लेकिन गणपति को चूहा ही वाहन पसन्द आया। उसी तरह इस महान विचार को हम ही वाहन मिले। ऐसी एक विलक्षण दशा आज हिन्दुस्तान में है। बापू ने इसे टालने की कोशिश की थी और बड़े वाहन पर यह बोझ हो, इसकी उन्होंने कोशिश भी की, लेकिन वह नहीं बना। इसलिए हम जैसे छोटे वाहन पर उसका बोझ पड़ा। इस हालत में हमें बहुत सावधान होना चाहिए, सोचने में बहुत ध्यान रखना चाहिए।

अभी गोराजी ने एक सहज विचार रखा—सत्याग्रह का। मैं कहना चाहता हूँ कि उन्होंने जो कहा, वह सत्याग्रह नहीं है। कुछ लोगों को लगता है कि बापू के जमाने के सत्याग्रह को विनोबा नहीं मानता है। वह उसे आगे ले जाना चाहता है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि उन्होंने जो विचार रखा, वह बापू के जमाने का भी सत्याग्रह नहीं है। वह सत्याग्रह ही नहीं है। गोराजी काफी गम्भीरता से सोचनेवाले हैं। उनकी सिन्सियारिटी पारदर्शक है। जो चित्त में आये, वह करें, ऐसी उतावली उनमें नहीं है। आप और हम किसी विचार को न मानें तो भी उसको

www.vinoba.in

किया जाय, ऐसा उनका स्वभाव नहीं है। उन्होंने एक लाउड थिंकिंग के तौर पर यह विचार पेश किया था। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि उस लाउड थिंकिंग की दिशा कतई गलत थी, गैर-जिम्मेवार थी और शान्ति-सेना के मूलभूत विचार के विरुद्ध थी। यद्यपि वे शान्ति के पूरे हिमायती हैं और अपनी कृति से कतई अशान्ति न हो, ऐसा चाहनेवाले, निर्दोष अहिंसाप्रेमी हैं और वे जानते हैं कि उनपर मेरी कितनी निष्ठा है। फिर भी मैं कहना चाहता हूँ कि उनका सोचने का ढंग गलत था।

हिंसा-अहिंसा का विवेक

यहाँपर एक भाई ने शान्ति के सिलसिले में बोलते हुए कहा था कि मिल का कपड़ा जला दिया जाय। गांधीजी ने उनके जमाने में परदेशी कपड़ा जलाया था, उसका विरोध गुरुदेव ने और एन्ड्रयूजने भी किया था और उस विषय में कई दफा बापू के साथ मेरा भी चर्चा हुई थी। लेकिन आज मिल का कपड़ा जलाना गांधीजी की उस कृति के साथ कोई सरोकार नहीं रखता है। उसके साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती है, हालाँकि गांधीजी के उस विचार में गुरुदेव और एन्ड्रयूज ने दोष देखा, मुझे भी कुछ शंका आयी, जो मैंने बापू के सामने नम्रतापूर्वक रखी। लेकिन फिर भी वह प्रोग्राम अहिंसा में आता था। लेकिन आज मिल का कपड़ा जलाने का काम हिंसा में आयेगा। आज देश में अपने मजदूरों से पैदा किया हुआ कपड़ा जलाना, जिसके लिए लोकमत भी प्रतिकूल नहीं है, ऐसे कपड़े को जलाना याने परिश्रम को जलाना है। यह प्रक्रिया हिंसा की दिशा में ले जानेवाली प्रक्रिया है।

यहाँपर और एक विचार पेश किया गया कि हमारी जो संस्थाएँ चलती हैं, वे बन्द हों। यह विचार सिर्फ गलत ही नहीं है, बल्कि हिंसक भी है। हमने भूदान-समितियाँ तोड़ीं। उसके साथ इसकी कोई तुलना नहीं हो सकती है। हमने भूदान-समतियाँ तोड़ीं तो हमारी नैतिक प्रतिष्ठा बढ़ी, हम बच गये, हमारे चित्त पर एक दबाव था, वह हट गया। नया सर्व-सेवा-संघ बनने की शक्यता भी उसीमें से पैदा हुई। अगर उस वक्त वह न होता तो इस प्रकार का संघ बनना संभव नहीं था। इसलिए वह तो अहिंसा की दिशा में एक उत्तम कदम था। लेकिन अभी जो खादी वगैरह की संस्थाएँ बनी हैं, अब वे सब बन्द की जायँ, यह जो विचार पेश किया गया, उस विचार में हिंसा है।

हमें अधिक गंभीरता पूर्वक सोचना चाहिए जब कि हम शांति-सैनिक होने का दावा करते हैं और हमने एक अखिल भारतीय शांति-सेना-मंडल की स्थापना की है। विचार में जब अहिंसा रहती है तो वाणी में और कृति में आती है, लेकिन विचार में ही हिंसा हो तो वाणी और कृति गलत रास्ते पर जाती है। इसलिए विचार की हिंसा ज्यादा गलत है। इस बात को हम समझें।

सम्यक् शिक्षण की आवश्यकता

आज कोरापुट के काम के बारे में बातें चल रही थीं कि वहाँ का काम आगे क्यों नहीं बढ़ा। इसमें कोई शक नहीं कि कोरापुट में और ओरिसा में ग्रामदान का जो काम हुआ, वह हमारे काम का दिव्य, भव्य प्रकरण है। इस आरोहण-काल का एक अद्भुत प्रकरण है। तिसपर भी वहाँ जो अपेक्षा की गयी थी, वह पूरी नहीं हुई। उसके कई कारण हैं। उनकी चर्चा करते हुए कहा गया कि हमारे कार्यकर्ताओं का चिंतन का स्तर ऊँचा होने की जरूरत है और आपस-आपस में मेल कैसे साधना, यह हमें सीखने का बाकी है। मैंने थोड़े में उसका सार बताया कि हम काम करते चले जाते हैं, लेकिन उसमें ज्ञान की और भक्ति की कमी है। अगर ज्ञान और भक्ति की कमी हमारे काम में रही तो हमारा काम नहीं निभेगा। यह कोई एक छोटा-सा काम होता और हमने कहीं कोने में भी सेवा की होती तो कुछ कम ज्ञान से निभ जाता और भक्ति की कमी हो तो भी निभ जाता। लेकिन जिस मूलभूत विचार पर श्रद्धा रखकर हम हृदय-परिवर्तन की बात सोचते हैं, उसमें भक्ति की कतई कमी नहीं चलेगी। कुछ काम ऐसे हैं, जो ज्ञान से पार पड़ते हैं और कुछ काम ऐसे होते हैं, जो ज्ञान के बिना ही पार पड़ सकते हैं। लेकिन भक्ति के बिना कोई काम पार नहीं पड़ेगा, चाहे वह छोटा हो या बड़ा हो।

इस तरह हमने ये दो आवश्यकताएँ महसूस कीं। खास कर इन दो सालों में बहुतों ने महसूस किया कि हमारे कार्यकर्ताओं के शिक्षण का आयोजन हमें करना चाहिए। सिर्फ स्थूल शिक्षण की बात नहीं, बल्कि चरित्र, भक्ति, ज्ञान आदि के साथ सम्बन्ध रखने-वाला शिक्षण और उसके साथ-साथ विज्ञान, सामाजिक विचार और मूलभूत आध्यात्मिक तत्त्व, इन सबका उचित योग जिसमें हो, ऐसा शिक्षण देने की योजना करनी चाहिए।

संस्कृत साहित्य की विशेषता

हमारे कार्यकर्ता अच्छे और सच्चे दिलवाले हैं, लेकिन उन्हें चिंतन का ढंग सीखना है। अपने देश में विचार की बहुत आजादी रही है। खास कर संस्कृत साहित्य में विचार-स्वातन्त्र्य जितना प्रगट हुआ, उतना शायद ही दुनिया के दूसरे किसी साहित्य में प्रगट हुआ होगा। संस्कृत साहित्य में सभी अच्छी चीजें हैं, ऐसी बात नहीं है। उसमें कई चीजों की न्यूनता है और कुछ गलत चीजें भी हैं। परन्तु संस्कृत साहित्य में विचार-स्वातन्त्र्य अद्भुत है। उसमें अत्यन्त आदरपूर्वक दूसरे के विचार का खंडन करने की बात है, प्रक्रिया है। षड्-दर्शनों में चिंतन कैसे करना, इसका भी एक मूलभूत शास्त्र है। यहाँका जो चिंतन-शास्त्र है, वह अद्भुत् ही है। मुझे यहाँके और पश्चिम के दोनों चिंतन-शास्त्र का अध्ययन करने का मौका मिला था। इसलिए मैं अपने अध्ययन से कहना चाहता हूँ कि यहाँपर जो चिंतन-शास्त्र प्रकट हुआ था, उसके सामने पश्चिम का चिंतन-शास्त्र टिक ही नहीं सकता है।

चिंतन का शास्त्र

षड्-दर्शनों के मूल में हमने विचार करने का शास्त्र विकसित किया था और हमारे लोग कभी विचार करने, चर्चा या बहस करने बैठते थे तो जैसे आज चर्चाएँ चलती हैं, वैसे नहीं बैठते थे। शंकराचार्य और मंडनमिश्र का वाद प्रसिद्ध है। शंकराचार्य केरल के थे और मंडनमिश्र मिथिला याने बिहार के थे। दोनों के बीच संस्कृत में ही वाद हो सकता था। उस वाद का निर्णय करने के लिए एक तटस्थ न्यायाधीश के तौर पर मंडनमिश्र की पत्नी सरस्वति को नियुक्त किया गया, जो महा विदुषी थी। उसका पति एक बाजू और शंकराचार्य दूसरी बाजू—ऐसी स्थिति थी। पत्नी कितनी भी विद्वान हो तो भी पति के लिए उसके मन में आसक्ति तो होती ही है। तिसपर भी शंकराचार्य ने माना कि वह जो फैसला देगी, उसे हम मान लेंगे। वह मामूली चर्चा नहीं थी। संन्यास और गृहस्थाश्रम की तुलना हो रही थी। वैसे बीच की हालत में गृहस्थाश्रम दोनों को मान्य था, लेकिन अन्तिम अवस्था कौनसी है, इसपर चर्चा हो

www.vinoba.in

रही थी। उसमें यह तय हुआ था कि उस वाद में शंकराचार्य हारे तो उन्हें गृहस्थ बनना पड़ेगा और मंडनमिश्र हारे तो उन्हें संन्यास लेना पड़ेगा। इस तरह उस वाद-निर्णय का इतना असर उन्होंने अपने जीवन पर माना था।

जरा सोचिये कि अगर उस वाद में शंकराचार्य हारते और उन्हें संन्यासी बनने के बाद फिर से गृहस्थ बनना पड़ता तो दुनिया में उनकी कितनी फजीहत होती, बदनामी होती, लेकिन उन दिनों महापुरुष चर्चा करते थे तो ऐसी ही चर्चा नहीं करते थे, जैसे यूक्लिड का भूमिति-शास्त्र है, जिसमें स्टेप बाय स्टेप आगे बढ़ा जाता है और नतीजे पर पहुँचा जाता है, उसमें स्टेप्स ही आगे ले जाते हैं और प्रमाण की जरूरत नहीं रहती है। वैसे ही यहाँपर चिन्तन का एक शास्त्र बना था। उस शास्त्र को माननेवाला कोई भी न्यायाधीश हो तो वह मान्य हो सकता था।

शंकराचार्य ने मंडनमिश्र की पत्नी को न्यायाधीश माना। कुछ दिनों तक चर्चा चली और आखिर मंडनमिश्र की पत्नी ने फैसला दिया। आप जरा सोचिये कि अगर उस फैसले में उसका पति हारा तो मतलब यह हुआ कि उसे संन्यासी बनना पड़ेगा याने पत्नी को सारी आसक्ति छोड़नी पड़ेगी। इतना सब होनेवाला था, फिर भी न्याय माँगा गया और न्याय दिया गया। उसमें शंकराचार्य ने कोई खतरा अपने ब्रह्मचर्य के लिए महसूस नहीं किया। क्योंकि वे आत्मानुभव की बुनियाद पर खड़े थे। वह अन्तर्बल तो उनके पास था ही, लेकिन और दूसरा बल, शास्त्र के चिन्तन का भी उनके साथ था। न्यायाधीश जो भी फैसला देगा, उस शास्त्र के अनुसार ही देगा, यह मानी हुई बात थी। जैसे अभी सर्व-सेवा-संघ ने एक पत्रक जाहिर किया है, जिसमें कहा गया है कि कहीं भी गोली चली तो उसकी ज्युडिशियल इन्क्वायरी होनी चाहिए। क्या ज्युडिशियल इन्क्वायरी में हमेशा न्याय ही मिलता है? फिर भी आपने माना है कि मिलेगा। क्योंकि कानून का एक शास्त्र बना हुआ है। उस शास्त्र के अनुसार ही कोई मनुष्य न्याय देगा तो तटस्थ बुद्धि से और ठीक से छानबीन कर देगा। तिस पर भी अन्याय हो सकता है। फिर भी आपने कानून में विश्वास रखा है, क्योंकि उसका एक शास्त्र बना है, वैसे ही हमारे यहाँ चिन्तन करने का एक शास्त्र बना हुआ है।

शंकराचार्य और मंडन मिश्र के उस वाद में संन्यास अन्तिम अवस्था है या गृहस्थाश्रम, इस विषय में तत्त्व-विचार की ही नहीं, समाज-शास्त्र की भी बात थी। लेकिन हमने चिन्तन का एक शास्त्र बनाया है, जो गौतम का शास्त्र है और उसे सबने माना है। कोई भी शास्त्र सीखना हो तो उसके लिए वह बुनियादी शास्त्र है। उसमें प्रमाण-चर्चा, प्रमेय-चर्चा और फिर उसका निर्णय—यह पद्धति थी। जो भी चर्चा चले, इस पद्धति के अनुसार ही चलती थी।

काशी में साधना-केन्द्र

हम शंकर, रामानुज, न्याय-सूत्र आदि पढ़ते हैं और देखते हैं कि उनमें से कोई भी एक-दूसरे का पर प्रहार करते हों तो भी प्रमाण के साथ ही प्रहार किया जाता है और कोई उसका उत्तर दे तो प्रमाण के साथ ही दिया जाता है। हमारे कार्यकर्ताओं को उस चिन्तन-शास्त्र का अध्ययन करना होगा और उसके शिक्षण में चिन्तन-शास्त्र रखना होगा, तब फिर वे ठीक ढंग से चिन्तन करेंगे और चिन्तन-शास्त्र के अनुसार योग्य चिन्तन होगा तो जो शब्द निकलेंगे, वे ठीक होंगे और शब्द-शक्ति कुंठित नहीं होगी। खुशी की बात है कि काशी में एक साधना-केन्द्र शुरू हो रहा है। वहाँ पर तालीम की योजना होगी, गहरी तालीम की भी और शिविरों की भी योजना होगी।

साहित्य को जीवन देनेवाला विचार

मैं एक बात और कहना चाहता हूँ, जो इसीसे सम्बन्धित है। हमने भारत में आठ साल में थोड़े-बहुत काम किये। गांधीजी की मृत्यु को अब बारह साल हो रहे हैं। इन बारह सालों में हमने क्या किया और क्या नहीं किया, इसपर सोचेंगे तो ध्यान में आयेगा कि जितना 'किया', उससे ज्यादा नहीं 'किया'। हम जो कर सके, ऐसी चीजें कम निकलेंगी और जो नहीं कर सके, ऐसी चीजें ज्यादा निकलेंगी। इसी सिलसिले में हमने शिक्षण की बात कही थी। वैसे ही जान-बूझकर नहीं, फिर भी हमने साहित्यिकों की और साहित्य-प्रवृत्ति की अपेक्षा की है। मैं जहाँ-जहाँ गया, मुझे आश्चर्य हुआ कि साहित्यिकों ने इस विचार के साथ बहुत ही सहानुभूति दिखाई। कर्नाटक में जितने बड़े-बड़े साहित्यिक मिले, वे कुल क कुल सर्वोदय-विचार पर लट्टू हैं, बिलकुल फिदा हैं। वे इसकी ओर इतने आकर्षित हैं कि कहते हैं कि यही चीज है, जो कि साहित्य को नव-जीवन देती है, अन्यथा साहित्य को जीवन देनेवाली दूसरी कोई चीज नहीं है। इसका मुझे इतना आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि मैं जानता था कि कर्नाटक में इस विचार पर पहले से ही श्रद्धा है। लेकिन मुझे आश्चर्य हुआ, जब बंगाल के साहित्यिकों ने भी इसपर श्रद्धा रखी और बड़े से बड़े साहित्यिकों ने कहा कि साहित्य में प्राण-संचार करनेवाली कोई चीज है तो यह नया विचार ही है, जो अभी प्रगट हो रहा है। यही अनुभव मुझे गुजरात में आया तो आश्चर्य नहीं हुआ, लेकिन मैंने देखा कि महाराष्ट्र में भी इस विचार के लिए अनुकूलता है। वैसे महाराष्ट्र में दो विचार के साहित्यिक हैं और वैसे होने ही चाहिए। जहाँ एक ही विचार के साहित्यिक होते हैं, वहाँ वह विचार कुंठित हो जाता है, इसलिए मैं समझता हूँ कि अगर सब साहित्यिक हमारे ही विचार का समर्थन करनेवाले निकले तो विचार कुंठित हो जायगा। महाराष्ट्र में दो विचार के साहित्यिक मिले, इसलिए मुझे खुशी हुई। वहाँपर कुछ अच्छे से अच्छे साहित्यिक इससे भिन्न विचारवाले हैं।

हमारा दोष

इतना सब होते हुए भी हमें साहित्यिकों की सेवा नहीं मिली। इसमें हम साहित्यिकों का दोष नहीं मानते हैं, बल्कि हमारा अपना ही दोष मानते हैं। हममें यह नम्रता होनी चाहिए कि जो हमारे आन्दोलन में नहीं हैं, तटस्थ हैं, उनके पास जायँ। क्योंकि वे इस आरोहण को हमसे ज्यादा जानेंगे, जो इससे अलग हैं, वे इसकी परीक्षा ठीक से कर सकेंगे, लेकिन हम सोचते हैं कि हम साहित्यिकों के पास क्यों जायँ? वे तो इस काम में दिलचस्पी लेते नहीं हैं, काम में योग देते नहीं हैं। अगर ऐसी कल्पना हम दूसरों के लिए करें कि जो हमारे काम में दिलचस्पी नहीं रखते हैं, मदद नहीं देते हैं, उनके पास क्यों जायँ तो वह कल्पना गलत नहीं होगी। लेकिन साहित्यिकों के लिए ऐसी कल्पना करना कतई गलत है। [चालू]

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता: गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी
www.vinoba.in